Dr. Nirmala Rana
B.A.(prg)IIIrd year VI Semester
Department Of Political Science

जैव-विविधता : महत्व, क्षरण एवं संरक्षण (Bio-diversity : importance, loss and conservation)

दुनिया में कुल कितनी प्रजातियाँ हैं यह ज्ञात से परे है, लेकिन एक अनुमान के अनुसार इनकी संख्या 30 लाख से 10 करोड़ के बीच है। विश्व में 14,35,662 प्रजातियों की पहचान की गयी है। यद्यपि बहुत सी प्रजातियों की पहचान अभी भी होना बाकी है। पहचानी गई मुख्य प्रजातियों में 7,51,000 प्रजातियाँ कीटों की, 2,48,000 पौधों की, 2,81,000 जन्तुओं की, 68,000 कवकों की, 26,000 शैवालों की, 4,800 जीवाणुओं की तथा 1,000 विषाणुओं की हैं। पारितंत्रों के क्षय के कारण लगभग 27,000 प्रजातियाँ प्रतिवर्ष विलुप्त हो रही हैं। इनमें से ज्यादातर ऊष्णकटिबंधीय छोटे जीव हैं। अगर जैव-विविधता क्षरण की वर्तमान दर कायम रही तो विश्व की एक-चौथाई प्रजातियों का अस्तित्व सन 2050 तक समाप्त हो जायेगा।

1. परिचय- जैव-विविधता (जैविक-विविधता) जीवों के बीच पायी जाने वाली विभिन्नता है जोकि प्रजातियों में, प्रजातियों के बीच और उनकी पारितंत्रों की विविधता को भी समाहित करती है। जैव-विविधता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्टर जी. रासन ने 1985 में किया था। जैव-विविधता तीन प्रकार की हैं। (i) आनुवंशिक विविधता, (ii) प्रजातीय विविधता; तथा (iii) पारितंत्र विविधता। प्रजातियों में पायी जाने वाली आनुवंशिक विभिन्नता को आनुवंशिक विविधता के नाम से जाना जाता है। यह आनुवंशिक विविधता जीवों के विभिन्न आवासों में विभिन्न प्रकार के अनुकूलन का परिणाम होती है। प्रजातियों में पायी जाने वाली विभिन्नता को प्रजातीय विविधता के नाम से जाना जाता है। किसी भी विशेष समुदाय अथवा पारितंत्र (इकोसिस्टम) के उचित कार्य के लिये प्रजातीय विविधता का होना अनिवार्य होता है। पारितंत्र विविधता पृथ्वी पर पायी जाने वाली पारितंत्रों में उस विभिन्नता को कहते हैं जिसमें प्रजातियों का निवास होता है। पारितंत्र विविधता विविध जैव-भौगोलिक क्षेत्रों जैसे- झील, मरुस्थल, ज्वारनद्मुख आदि में प्रतिबिम्बित होती है।

2. जैव-विविधता का महत्त्व- जैव-विविधता का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैव-विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन असंभव है। जैव-विविधता के विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैं-

1. जैव-विविधता भोजन, कपड़ा, लकड़ी, ईंधन तथा चारा की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विभिन्न प्रकार की फसलें जैसे गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम), धान (ओराइजा सेटाइवा), जौ (हारडियम वलगेयर), मक्का (जिया मेज), ज्वार (सोरघम वलगेयर), बाजरा (पेनिसिटम टाईफाइडिस), रागी (इल्यूसिन कोरकेना), अरहर (कैजनस कैजान), चना (साइसर एरियन्टिनम), मसूर (लेन्स कुलिनेरिस) आदि से हमारी भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि

कपास (गासिपियम हरसुटम) जैसी फसल हमारे कपड़े की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। सागवान (टेक्टोना ग्रान्डिस), साल (शोरिया रोबस्टा), शीशम (डेलवर्जिया सिस्) आदि जैसे वृक्षों की प्रजातियाँ निर्माण कार्यों हेतु लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। बबूल (अकेसिया नाइलोटिका), शिरीष (एल्बिजिया लिबेक), सफेद शिरीष (एल्बिजिया प्रोसेरा), जामुन (साइजिजियम क्यूमिनाई), खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया), हल्दू (हेल्डिना कार्डिफोलिया), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) आदि वृक्षों की प्रजातियों से हमारी ईंधन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि शिरीष (एल्बिजिया लिबेक),घमार (मेलाइना आरबोरिया), सहजन (मोरिंगा आलिफेरा), शहतूत (मोरस अल्बा), बेर (जिजिफस जुजुबा), बबूल (अकेसिया नाइलोटिका), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा), नीम (एजाडिराक्टा इण्डिका) आदि वृक्षों की प्रजातियों से पशुओं के लिये चारा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

2. जैव-विविधता कृषि पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ रोगरोधी तथा कीटरोधी फसलों की किस्मों के विकास में सहायक होती हैं। हरित क्रांति के लिये उत्तरदायी गेहूँ की बौनी किस्मों का विकास जापान में पाये जाने वाली नारीन-10 नामक गेहूँ की प्रजाति की मदद से किया गया था। इसी प्रकार धान की बौनी किस्मों का विकास ताइवान में पाये जाने वाली डी-जिओ-ऊ-जेन नामक धान की प्रजाति से किया गया था। सन 1970 के प्रारम्भिक वर्षों में विषाणु के संक्रमण से होने वाली धान की ग्रासी स्टन्ट नामक बीमारी के कारण एशिया महाद्वीप में 1,60,000 हेक्टेयर से भी ज्यादा फसल को नुकसान पहुँचाया था। धान की जातियों में इस बीमारी के प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित करने हेतु मध्य भारत में पायी जाने वाली जंगली धान की प्रजाति ओराइजा निभरा का उपयोग किया गया था। आई आर 36 नामक विश्व प्रसिद्ध धान की जाति के भी विकास में ओराइजा निभरा का उपयोग किया गया है।

3. वानस्पतिक जैव-विविधता औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। एक अनुमान के अनुसार आज लगभग 30 प्रतिशत उपलब्ध औषधियों को उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों से प्राप्त किया जाता है। उष्णकटिबंधीय शाकीय वनस्पति सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) विनक्रिस्टीन तथा विनव्लास्टीन नामक क्षारों का स्रोत होता है जिनका उपयोग रक्त कैंसर के उपचार में होता है। सर्पगंधा (राओल्फिया सरपेन्टीना) पादप रेसर्पीन नामक महत्त्वपूर्ण क्षार का स्रोत होता है जिसका उपयोग उच्च-रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। गुग्ल (कामीफेरा बिटाई) नामक पौधे से प्राप्त गोंद का उपयोग गठिया के इलाज में किया जाता है। सिनकोना (सिनकोना कैलिसिया) वृक्ष की छाल से प्राप्त कुनैन नामक क्षार का उपयोग मलेरिया ज्वर के उपचार में किया जाता है। इसी प्रकार आर्टिमिसिया एनुआ नामक पौधे से प्राप्त आर्टिमिसिनीन नामक रसायन का उपयोग मस्तिष्क मलेरिया के उपचार में होता है। जंगली रतालू (डायसकोरिया डेल्टाइडिस) से प्राप्त डायसजेनीन नामक रसायन का उपयोग स्त्री गर्भनिरोधक के रूप में होता है।

4. जैव-विविधता पर्यावरण प्रदूषण के निस्तारण में सहायक होती है। प्रदूषकों का विघटन तथा उनका अवशोषण कुछ पौधों की विशेषता होती है। सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) नामक पौधे में ट्राइनाइट्रोटालुइन जैसे घातक विस्फोटक को विघटित करने की क्षमता होती है। सूक्ष्म-जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ जहरीले बेकार पदार्थों के साफ-सफाई में

सहायक होती हैं। सूक्ष्म-जीवों की स्यूडोमोनास प्यूटिडा तथा आर्थोबैक्टर विस्कोसा में औद्योगिक अपशिष्ट से विभिन्न प्रकार के भारी धातुओं को हटाने की क्षमता होती है। पौधों की कुछ प्रजातियों में मृदा से भरी धातुओं जैसे कॉपर, कैडमियम, मरकरी, क्रोमियम के अवशोषण तथा संचयन की क्षमता पायी जाती है। इन पौधों का उपयोग भारी धातुओं के निस्तारण में किया जा सकता है। भारतीय सरसों (ब्रैसिका जूनसिया) में मृदा से क्रोमियम तथा कैडमियम के अवशोषण की क्षमता पायी जाती है। जलीय पौधे जैसे जलकुम्भी (आइकार्निया कैसपीज), लैम्ना, साल्विनिया तथा एजोला का उपयोग जल में मौजूद भारी धातुओं (कॉपर, कैडमियम, आयरन एवं मरकरी) के निस्तारण में होता है।

5. जैव-विविधता में संपन्न वन पारितंत्र कार्बन डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड हरित गृह गैस है जो वैश्विक तपन के लिये उत्तरदायी है। उष्णकटिबंधीय वनविनाश के कारण आज वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि हो रही है जिसके कारण भविष्य में वैश्विक जलवायु के अव्यवस्थित होने का खतरा दिनोंदिन बढ़ रहा है।

6. जैव-विविधत मृदा निर्माण के साथ-साथ उसके संरक्षण में भी सहायक होती है। जैव-विविधता मृदा संरचना को सुधारती है, जल-धारण क्षमता एवं पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाती है। जैव-विविधता जल संरक्षण में भी सहायक होती है क्योंकि यह जलीय चक्र को गतिमान रखती है। वानस्पतिक जैव-विविधता, भूमि में जल रिसाव को बढ़ावा देती है जिससे भूमिगत जलस्तर बना रहता है।

7. जैव-विविधता पोषक चक्र को गतिमान रखने में सहायक होती है। वह पोषक तत्वों की मुख्य अवशोषक तथा स्रोत होती है। मृदा की सूक्ष्मजीवी विविधता पौधों के मृत भाग तथा मृत जन्तुओं को विघटित कर पोषक तत्वों को मृदा में मुक्त कर देती है जिससे यह पोषक तत्व पुनः पौधों को प्राप्त होते हैं।

8. जैव-विविधता पारितंत्र को स्थिरता प्रदान कर पारिस्थितिक संतुलन को बरकरार रखती है। पौधे तथा जन्तु एक दूसरे से खाद्य शृंखला तथा खाद्य जाल द्वारा जुड़े होते हैं। एक प्रजाति की विलुप्ति दूसरे के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रकार पारितंत्र कमजोर हो जाता है।

9. पौधे शाकभक्षी जानवरों के भोजन के स्रोत होते हैं जबकि जानवरों का मांस मनुष्य के लिये प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत होता है।

10. समुद्र के किनारे खड़ी जैव-विविधता संपन्न ज्वारीय वन (मैंग्रोव वन) प्राकृतिक आपदाओं जैसे समुद्री तूफान तथा सुनामी के खिलाफ ढाल का काम करते हैं।

11. जैव-विविधता विभिन्न सामाजिक लाभ भी हैं। प्रकृति, अध्ययन के लिये सबसे उत्तम प्रयोगशाला है। शोध, शिक्षा तथा प्रसार कार्यों का विकास, प्रकृति एवं उसकी जैव-विविधता की मदद से ही संभव है। इस बात को साबित करने के लिये तमाम साक्ष्य हैं कि मानव संस्कृति तथा पर्यावरण का विकास साथ-साथ हुआ है। अतः सांस्कृतिक पहचान के लिये जैव-विविधता का होना अति आवश्यक है।

12. जैविक रूप से संपन्न वन पारितंत्र, वन्य-जीवों तथा आदिवासियों का घर होता है। आदिवासियों की संपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति वनों द्वारा होती है। वनों के क्षय से न सिर्फ आदिवासी संस्कृति प्रभावित होगी अपितु वन्य-जीवन भी प्रभावित होगा।

3. जैव-विविधता का क्षरण - पृथ्वी पर जैविक संसाधनों के क्षय को जैव विविधता क्षरण के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी का जैविक धन जैव-विविधता लगभग 400 करोड़ वर्षों के विकास का परिणाम है। इस जैविक धन के निरंतर क्षय ने मनुष्य के अस्तित्व के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर दिया है। दुनिया के विकासशील देशों में जैव-विविधता क्षरण चिन्ता का विषय है। एशिया, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका के देश जैव-विविधता संपन्न हैं जहाँ तमाम प्रकार के पौधों तथा जन्तुओं की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। विडम्बना यह है कि अशिक्षा, गरीबी, वैज्ञानिक विकास का अभाव, जनसंख्या विस्फोट आदि ऐसे कारण हैं जो इन देशों में जैव-विविधता क्षरण के लिये जिम्मेदार हैं। दुनिया में कुल कितनी प्रजातियाँ हैं यह ज्ञात से परे है लेकिन एक अनुमान के अनुसार इनकी संख्या 30 लाख से 10 करोड़ के बीच है। दुनिया में 14,35,662 प्रजातियों की पहचान की गयी है। हालाँकि बहुत सी प्रजातियों की पहचान अभी भी होना बाकी है। पहचानी गई मुख्य प्रजातियों में 7,51,000 प्रजातियाँ कीटों की, 2,48,000 पौधों की, 2,81,000 जन्तुओं की, 68,000 कवकों की 26,000 शैवालों की, 4,800 जीवाणुओं की तथा 1,000 विषाणुओं की हैं। पारितंत्रों के क्षय के कारण लगभग 27,000 प्रजातियाँ प्रतिवर्ष विलुप्त हो रही हैं। इनमें से ज्यादातर उष्णकटिबंधीय छोटे जीव हैं। अगर जैव-विविधता क्षरण की वर्तमान दर कायम रही तो विश्व की एक-चौथाई प्रजातियों का अस्तित्व सन 2050 तक समाप्त हो जायेगा।

पृथ्वी के पूर्व के 50 करोड़ वर्ष के इतिहास में छः बड़ी विलुप्ति लहरों ने पहले ही दुनिया की बहुत सी प्रजातियों को समाप्त कर दिया जिनमें छिपकली परिवार के विशालकाय डायनासोर भी शामिल हैं। विलुप्ति लहरों के क्रमवार काल में पहला आर्डोविसियन काल (50 करोड़ वर्ष पूर्व), दूसरा डेवोनियन काल (40 करोड़ वर्ष पूर्व), तीसरा परमियन काल (25 करोड़ वर्ष पूर्व), चौथा ट्रायसिक काल (18 करोड़ वर्ष पूर्व) है। पाँचवा क्रिटेसियस काल (6.5 करोड़ वर्ष पूर्व), छठवां प्लाइस्टोसीन काल (10 लाख वर्ष पूर्व) था। जुरासिक काल में पृथ्वी पर राज करने वाले विशाल जीव डायनासोर क्रिटेसियस काल में ही इस पृथ्वी से विलुप्त हो गये। विलुप्ति की छठवीं लहर में विशाल स्तनधारियों एवं पक्षियों की बहुत सी प्रजातियों का पृथ्वी से पतन हो गया। उक्त सभी छः विलुप्ति लहरों का प्रमुख कारण प्राकृतिक था जबकि सातवीं विलुप्ति का वर्तमान दौर मानव की विध्वंसक गतिविधियाँ हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, जैव विविधता

संपन्न होते हैं जिन्हें 'पृथ्वी का फेफड़ा' कहा जाता है क्योंकि ये ऑक्सीजन के प्रमुख उत्सर्जक तथा कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषक होते हैं। इनका विस्तार पृथ्वी की कुल 7 प्रतिशत भौगोलिक भूमि पर है। दुनिया की कुल 50 प्रतिशत पहचानी गई प्रजातियाँ इन्हीं वनों में पायी जाती हैं। चूँकि ज्यादातर वर्षा वन दुनिया के विकासशील देशों में पाये जाते हैं इसलिये जनसंख्या विस्फोट इन वनों के विनाश का प्रमुख कारण है। समय रहते अगर संरक्षण को नहीं अपनाया गया तो बहुत जल्द इनमें 90 प्रतिशत आवासों का विनाश होगा परिणामस्वरूप 15,000 से 50,000 प्रजातियों की क्षति प्रतिवर्ष होगी। उष्णकटिबंधीय वनविनाश आने वाले अगले 50 वर्षों में जैव-विविधता क्षरण का प्रमुख कारण होगा।

संपूर्ण विश्व में पौधों की लगभग 60,000 प्रजातियाँ तथा जन्तुओं की 2,000 प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। यद्यपि इसमें से ज्यादातर प्रजातियाँ पौधों की हैं पर इसमें कुछ प्रजातियाँ जन्तुओं की भी हैं। इनमें मछलियाँ (343), जलथलचारी (50), सरीसृप (170), अकेशरुकी (1,355), पक्षियाँ (1,037) तथा स्तनपायी (497) शामिल हैं।

जीन कोष से जीन के क्षति को आनुवंशिक क्षरण कहते हैं जिससे पृथ्वी के आनुवंशिक संसाधनों में कमी होती है। पिछली सदी, फसलों में 75 प्रतिशत आनुवंशिक विविधता की क्षति की गवाह रही है। पिछली सदी के अंत तक अधिक पैदावार देने वाली किस्मों ने गेहूँ तथा धान की खेती वाले क्षेत्रों के 50 प्रतिशत क्षेत्रफल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। आनुवंशिक क्षरण के निम्नलिखित दो प्रमुख कारण हैं-

1. फसल संख्या- पूर्व में अधिक संख्या में पौधों का उपयोग विभिन्न कार्यों हेतु होता था लेकिन धीरे-धीरे इन पौधों की संख्या में गिरावट आयी। उदाहरण के लिये 3,000 भोजन पौधों की प्रजातियों में केवल 150 का वाणिज्यीकरण हुआ। कृषि में 12 प्रजातियों का प्रभुत्व है जिनमें 4 फसलों की प्रजातियाँ कुल पैदावार का 50 प्रतिशत पैदा करती हैं। (धान, गेहूँ मक्का एवं आलू)।

2. फसलों के प्रकार - आज एक ही प्रकार की फसल में ज्यादा से ज्यादा अच्छे गुणों को समावेश करने का चलन है। जैसे ही नई प्रकार की फसल विकसित होती है उसका बड़े पैमाने पर उपयोग होता है परिणामस्वरूप स्थानीय देसी किस्मों का प्रयोग बन्द हो जाता है जिससे स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं। आनुवंशिक क्षरण गंभीर चिन्ता का विषय है क्योंकि यह भविष्य में फसलों के सुधार कार्यक्रम को प्रभावित करेगा। फसलों की स्थानीय तथा पारंपरिक प्रजातियों में उपयोगी गुण होते हैं जिनका उपयोग फसलों की वर्तमान प्रजातियों के विकास में किया जा सकता है। इसलिये फसलों की विविधता को बनाए रखना अति आवश्यक है। आनुवंशिक क्षरण गंभीर चिन्ता का विषय है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव फसल प्रजनन कार्यक्रम पर पड़ेगा। फसलों की पारंपरिक किस्में तथा उनकी जंगली प्रजातियों में बहुत से उपयोगी जींस होते हैं जिनका उपयोग फसलों की वर्तमान किस्मों के सुधार में किया जा सकता है।

4. जैव-विविधता क्षरण के कारण - जैव-विविधता क्षरण के विभिन्न कारण हैं जिनमें आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, अति-शोषण, वन्य-जीवों का शिकार, वनविनाश, अति-चराई, बीमारी, चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग नाशीजीवों तथा परभक्षियों का नियंत्रण, प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश प्रमुख है-

1. आवास विनाश- मानव जनसंख्या वृद्धि एवं मानव गतिविधियाँ आवास विनाश का प्रमुख कारण हैं। आवास की क्षति वर्तमान में अकशेरुकी जीवों के विलुप्ति का एक प्रमुख कारण है। बहुत से देशों में विशेषकर द्वीपों पर जब मानव जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होती है तो अधिकतर प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं। दुनिया के 61 में से 41 प्राचीन विश्व उष्णकटिबंधीय देशों में 50 प्रतिशत से ज्यादा वन्य-जीवों के आवास नष्ट हो चुके हैं। ज्यादातर स्थितियों में आवास विनाश के प्रमुख कारक औद्योगिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ हैं जिनका संबंध वैश्विक अर्थव्यवस्था जैसे- खनन, पशु पालन, कृषि, वानिकी, बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं की स्थापना आदि से है। वर्षा वन, उष्णकटिबंधीय शुष्क वन, नमभूमियाँ, ज्वारीय वन तथा घास के मैदान जोखिमग्रस्त आवास हैं।

2. आवास विखण्डन - आवास विखण्डन वह प्रक्रिया है जिसमें एक विशाल क्षेत्र का आवास क्षेत्रफल कम हो जाता है और प्रायः दो या अधिक टुकड़ों में बंट जाता है। जब आवास नष्ट हो जाता है तो टुकड़े बहुधा एक दूसरे से अलग-अलग क्षरित अवस्था में प्रकट होते हैं। आवास विखण्डन प्रजातियों के विस्तार तथा स्थापना को सीमित कर देता है, जिससे जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

3. पर्यावरण प्रदूषण - बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण जैव-विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है। नाशिजीवनाशक (पेस्टीसाइड), औद्योगिक रसायन तथा अपशिष्ट आदि पर्यावरण प्रदूषण के लिये मुख्यतः उत्तरदायी हैं। नाशिजीवनाशक प्रदूषण के परिणामस्वरूप मृदा के सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल वर्षा के बहाव से जब नाशिजीवनाशक जलस्रोतों में पहुँचते हैं तो वहाँ भी सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जंतुओं को मार देते हैं। परिणामस्वरूप जैव-विविधता का क्षय होता है। नाशिजीवनाशक डी.डी.टी. (डाईक्लोरो डाईफिनाइल ट्राईक्लोरोइथेन) पक्षियों की गिरती आबादी का एक प्रमुख कारण हैं। डी.डी.टी. खाद्य शृंखला के माध्यम से पक्षियों के शरीर में पहुँचता है जहाँ वह इसट्रोजेन नामक हार्मोन की गतिविधि को प्रभावित करता है जिससे अण्डे की खोल कमजोर हो जाती है, परिणामस्वरूप अण्डा समय से पहले फूट जाता है जिससे भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। अम्ल वर्षा के कारण नदियों तथा झीलों का अम्लीकरण जलीय जीवों के लिये एक प्रमुख खतरा बनता जा रहा है।

4. विदेशी मूल की वनस्पतियों का आक्रमण - विदेशी मूल की वनस्पतियों के आक्रमण के परिणामस्वरूप जैव

विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है इसलिये इन्हें 'जैविक प्रदूषक' की संज्ञा दी जाती है। सफल विदेशी मूल की वनस्पति की प्रजाति देसी प्रजातियों को विस्थापित कर उन्हें विलुप्ति के स्तर तक पहुँचा देती हैं। इसके अतिरिक्त वह आवास पर विपरीत प्रभाव डालकर देसी प्रजाति के अस्तित्व के लिये खतरा पैदा कर देती है। भारत में बहुत से विदेशी मूल की वनस्पतियाँ जैसे गाजर घास (पार्थिनियम हिट्रोफोरस), कुर्री (लैंटाना कमरा), काबुली कीकर (प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा) आदि जैव-विविधता क्षरण के प्रमुख कारण साबित हो रहे हैं।

5. अतिशोषण - बढ़ती मनव जनसंख्या के कारण जैविक संसाधनों का दोहन भी बढ़ा है। संसाधनों का उपयोग तब ज्यादा बढ़ जाता है जब पूर्व में उपयोग नहीं हुई अथवा स्थानीय उपयोग वाली प्रजाति के लिये वाणिज्यिक बाजार विकसित हो जाता है। अतिशोषण दुनिया के लगभग एक-तिहाई लुप्तप्राय कशेरुकी जीवों के लिये प्रमुख खतरा हैं। बढ़ती ग्रामीण बेरोजगारी, उन्नत शोषण विधियों का विकास तथा अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण ने बहुत सी प्रजातियों को विलुप्ति के शीर्ष पर पहुँचा दिया है। अगर प्रजाति पूरी तरह से समाप्त नहीं होती है तो भी उसकी जनसंख्या उस स्तर तक घट जाती है जहाँ से वह अपना पुनरुत्थान करने में अक्षम होती है।

6. शिकार - जन्तुओं का शिकार आमतौर से दांत, सींग, खाल, कस्तूरी आदि े लिये किया जाता है। अंधाधुंध शिकार के कारण जानवरों की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्तप्राय जन्तुओं की श्रेणी में पहुँच चुकी है। असम राज्य में एक सींग वाले गैण्डे की जनसंख्या में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गयी है क्योंकि इसका शिकार इसकी सींग के लिये किया जाता है जिसका उपयोग कामोतेजक दवाओं के निर्माण में होता है। इसी प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों विशेषकर मणिपुर में चीरू नामक जानवर का शिकार उसकी खाल के लिये किया जाता है जिससे शाहतूस शाल का निर्माण होता है। बाघ, तेन्दुआ, चिंकारा, अजगर, कृष्ण मृग तथा मगरमच्छ का शिकार भी खाल के लिये किया जाता है। हाथियों का शिकार दाँत के लिये किया जाता है जबकि बारहसिंगा का शिकार सींग के लिये किया जाता है। कस्तूरी मृग का शिकार कस्तूरी के लिये किया जाता है।

7. वन विनाश - विकास कार्यों तथा कृषि के विस्तार के कारण उष्णकटिबंधीय देशों में जंगलों को बड़े पैमाने पर नष्ट किया गया है जिसके परिणामस्वरूप उष्णकटिबंधीय वनों में जैव-विविधता का क्षरण हुआ है। उष्णकटिबंधीय देशों में आदिवासियों द्वारा की जाने वाली झूम कृषि (स्थानान्तरी कृषि) भी जैव-विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण रही है। भारत के आदिवासी बहुत पूर्वोत्तर राज्यों में झूम कृषि के कारण वनों के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गयी है।

8. अति-चराई - शुष्क तथा अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में चराई जैव-विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण है। भेड़ों, बकरियों तथा अन्य शाकभक्षी पशुओं द्वारा चराई के कारण पौधों की प्रजातियों को नुकसान पहुँचता है। अति-चराई के कारण पौधों का प्रकाश-संश्लेषण वाला भाग नष्ट हो जाता है जिससे पौधों की मृत्यु हो जाती है। बहुत सी कमजोर प्रजातियाँ

शाकभक्षी पशुओं द्वारा कुचल दी जाती हैं। भारी चराई, प्रजाति को समुदाय से नष्ट कर देती है।

9. बीमारी - मानव गतिविधियाँ वन्य-जीवों की प्रजातियों में बीमारियों को बढ़ावा देती हैं। जब कोई जानवर एक प्राकृतिक संरक्षित क्षेत्र तक सीमित होता है तब उसमें बीमारी के प्रकोप की संभावना ज्यादा होती है। दबाव में जानवर बीमारी के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं। ठीक इसी प्रकार मनुष्य की कैद में वन्य-जीव बीमारियों के प्रति अत्यन्त ही संवेदनशील होते हैं।

10. चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग- चिकित्सा शोध, वैज्ञानिक शोध तथा चिड़ियाघर के लिये कुछ विशिष्ट जानवरों को प्राकृतिक वास से पकड़ना प्रजाति के लिये खतरनाक साबित होता है क्योंकि इससे इनकी जनसंख्या में गिरावट होने की संभावना रहती है जिससे ये जानवर विलुप्ति के कगार पर पहुँच सकते हैं। चिकित्सा शोध महत्त्वपूर्ण क्रिया है लेकिन यह संकटग्रस्त जंगली प्राइमट्स जैसे गुरिल्ला, चिम्पांजी तथा ओरांगुटान के लिये खतरनाक है।

11. नाशीजीवों तथा परभक्षियों का नियन्त्रण - फसलों तथा पशुओं का नाशीजीवों तथा परभक्षियों से सुरक्षा ने भी बहुत से प्रजातियों को विलुप्ति के कगार पर पहुँचा दिया है। विष के प्रयोग से एक विशेष प्रजाति को नष्ट करने के प्रयास में कभी-कभी उस प्रजाति के परभक्षी भी विष के शिकार हो जाते हैं जिससे पारितंत्र में खाद्य शृंखला अव्यवस्थित हो जाती है और नियंत्रित प्रजाति नाशीजीव (पेस्ट) का रूप धारण कर जैव-विविधता को क्षति पहुँचाती है।

12. प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश - प्रवेश कराई गयी प्रजाति दूसरी प्रजातियों को उनके शिकार, भोजन के लिये प्रतियोगिता, आवास को नष्टकर अथवा पारिस्थितिक संतुलन को अव्यवस्थित कर उन्हें प्रभावित कर सकती है। उदाहरणस्वरूप हवाई द्वीप में वर्ष 1883 में गन्ने की फसल को बर्बाद कर रहे चूहों के नियंत्रण हेतु नेवलों को जानबूझकर प्रवेश कराया गया था जिसके फलस्वरूप बहुत से अन्य स्थानीय प्रजातियाँ भी प्रभावित हुई थी।

5. जैव-विविधता का संरक्षण - जैव विविधता संरक्षण का आशय जैविक संसाधनों के प्रबंधन से है जिससे उनके व्यापक उपयोग के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता भी बनी रहे। चूँकि जैव-विविधता मानव सभ्यता के विकास की स्तम्भ है इसलिये इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव-विविधता हमारे भोजन, कपड़ा, औषधीय, ईंधन आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जैव-विविधता पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त यह प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा आदि से राहत प्रदान करती है। वास्तव में जैव-विविधता प्रकृति की स्वभाविक संपत्ति है और इसका क्षय एक प्रकार से

प्रकृति का क्षय है। अतः प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के लिये जैव-विविधता को संरक्षण प्रदान करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

5. जोखिमग्रस्त प्रजातियाँ - मेस तथा स्टुअर्ट एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संघ (आई.यू.सी.एन. 1994 डी) ने वनस्पतियों एवं जन्तुओं की कम होती प्रजातियों को संरक्षण हेतु निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा है-

1. असहाय प्रजाति - वे प्रजातियाँ जो कि संकटग्रस्त प्रजातियाँ बन सकती हैं अगर वर्तमान कारक का प्रकोप जारी रहा जो इनकी जनसंख्या के गिरावट के लिये जिम्मेदार है। भारत में भालू (स्लाथ बीयर) इसका उदाहरण है।

2. दुर्लभ प्रजाति - यह वे प्रजातियाँ होती हैं जिनकी संख्या कम होने के कारण उनकी विलुप्ति का खतरा बना रहता है। भारत में शेर (एशियाटिक लायन) इसका उदाहरण है।

3. अनिश्चित प्रजाति- वे प्रजातियाँ जिनकी विलुप्ति का खतरा है लेकिन कारण अज्ञात हैं। मेक्सिकन प्रेरी कुत्ता इसका उदाहरण है।

4. संकटग्रस्त प्रजाति - वे प्रजातियाँ जिनके विलुप्ति का निकट भविष्य में खतरा है। इन प्रजातियों की जनसंख्या गम्भीर स्तर तक घट चुकी है तथा इनके प्राकृतिक आवास भी बुरी तरह घट चुके हैं। गंगा डॉल्फिन तथा नीला ह्वेल इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

5. गंभीर संकटग्रस्त प्रजाति - वे प्रजातियाँ जो निकट भविष्य में जंगली अवस्था में विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हो। भारत में ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड (सोहन चिड़िया) तथा गंगा शार्क इसके उदाहरण हैं।

6. विलुप्त प्रजाति - वे प्रजातियाँ जिनका अस्तित्व पृथ्वी से समाप्त हो चुका है। डाइनासोर तथा डोडो इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

7. अपर्याप्त रूप से ज्ञात प्रजाति - वे प्रजातियाँ जो संभवतः किसी एक संरक्षण श्रेणी से संबद्ध होती हैं लेकिन अपर्याप्त जानकारी के अभाव में उन्हें किसी विशेष प्रजातीय श्रेणी में रखा गया है।

8. जंगली अवस्था में विलुप्त प्रजाति - वे प्रजातियाँ जो वर्तमान में खेती अथवा कैद में होने के कारण ही जीवित हैं। ये प्रजातियाँ अपने पूर्व के प्राकृतिक आवास से विलुप्त हो चुकी हैं।

9. संरक्षण आधारित प्रजाति - ये वे प्रजातियाँ होती हैं जो आवास आधारित संरक्षण कार्यक्रम पर निर्भर होती हैं। अगर संरक्षण कार्यक्रम रुक जाता है तो ये प्रजातियाँ पाँच वर्ष के भीतर किसी भी जोखिमग्रस्त श्रेणी के अंतर्गत आ सकती

हैं।

10. लगभग जोखिमग्रस्त प्रजाति - ये वे प्रजातियाँ हैं जो दुर्लभ श्रेणी में पहुँचने के करीब होती हैं।

11. कम महत्त्व वाली प्रजाति - वे प्रजातियाँ, जो न तो गम्भीर संकटग्रस्त, संकटग्रस्त अथवा असहाय होती हैं न तो वह संरक्षण आधारित अथवा लगभग संकटग्रस्त के योग्य होती हैं।

12. आंकड़ों की अभाव वाली प्रजाति - वे प्रजातियाँ जिनके विषय में पर्याप्त आंकड़ों के अभाव के कारण इनको किसी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

13. अमूल्यांकित प्रजाति - वे प्रजातियाँ जिनका आकलन किसी भी मापदण्ड के अनुसार नहीं किया गया है।

विश्व संरक्षण रणनीति ने जैव-विविधता संरक्षण के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये हैं-

1. उन प्रजातियों के संरक्षण का प्रयास होना चाहिए जो कि संकटग्रस्त हैं।
2. विलुप्ति पर रोक के लिये उचित योजना तथा प्रबंधन की आवश्यकता।
3. खाद्य फसलों, चारा पौधों, मवेशियों, जानवरों तथा उनके जंगली रिश्तेदारों को संरक्षित किया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक देश की वन्य प्रजातियों के आवास को चिंहित कर उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।
5. उन आवासों को सुरक्षा प्रदान करना चाहिए जहाँ प्रजातियाँ भोजन, प्रजनन तथा बच्चों का पालन-पोषण करती हैं।
6. जंगली पौधों तथा जन्तुओं के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण होना चाहिए।

वनस्पतियों एवं जन्तुओं की प्रजातियों तथा उनके आवास को बचाने के लिये समयबद्ध कार्यक्रम को लागू करने की आवश्यकता है जिससे जैव-विविधता संरक्षण को बढ़ावा मिल सके। अतः संरक्षण की कार्ययोजना आवश्यक रूप से निम्नलिखित दिशा में होनी चाहिए-

1. द्वीपों सहित देश के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले जैविक संसाधनों को सूचीबद्ध करना।
2. संरक्षित क्षेत्र के जाल जैसे राष्ट्रीय पार्क, जैवमण्डल रिजर्व, अभ्यारण्य, जीन कोष आदि के माध्यम से जैव-विविधता का संरक्षण।
3. क्षरित आवास का प्राकृतिक अवस्था में पुनरुत्थान।
4. प्रजाति को किसी दूसरी जगह उगाकर उसे मानव दबाव से बचाना।
5. संरक्षित क्षेत्र बनने से विस्थापित आदिवासियों का पुनर्वास।
6. जैव-प्रौद्योगिकी तथा ऊतक संवर्धन की आधुनिक तकनीकों से लुप्तप्राय प्रजातियों का गुणन।

7. देसी आनुवंशिक विविधता संरक्षण हेतु घरेलू पौधों तथा जन्तुओं की प्रजातियों की सुरक्षा।
8. जोखिमग्रस्त प्रजातियों का पुनरुत्थान।
9. बिना विस्तृत जाँच के विदेशी मूल के पौधों के प्रवेश पर रोक।
10. एक ही प्रकार की प्रजाति का विस्तृत क्षेत्र पर रोपण को हतोत्साहन।
11. उचित कानून के जरिये प्रजातियों के अतिशोषण पर लगाम।
12. प्रजाति व्यापार संविदा के अंतर्गत अतिशोषण पर नियन्त्रण।
13. आनुवंशिक संसाधनों के संपोषित उपयोग तथा उचित कानून के द्वारा सुरक्षा।
14. संरक्षण में सहायक पारंपरिक ज्ञान तथा कौशल को प्रोत्साहन।

5. जैव-विविधता संरक्षण की विधियाँ - जैव-विविधता संरक्षण की मुख्यतः दो विधियाँ होती हैं जिन्हें यथास्थल संरक्षण तथा बहिःस्थल संरक्षण के नाम से जाना जाता है। जो कि निम्नवत हैं-

1. यथास्थल संरक्षण - इस विधि के अंतर्गत प्रजाति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास तथा मानव द्वारा निर्मित पारितंत्र में किया जाता है जहाँ वह पायी जाती है। इस विधि में विभिन्न श्रेणियों के सुरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन विभिन्न उद्देश्यों से समाज के लाभ हेतु किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में राष्ट्रीय पार्क, अभ्यारण्य तथा जैवमण्डल रिजर्व आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय पार्क की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वन्य-जीवन को संरक्षण प्रदान करना होता है जबकि अभ्यारण्य की स्थापना का उद्देश्य किसी विशेष वन्य-जीव की प्रजाति को संरक्षण प्रदान करना होता है। जैवमण्डल रिजर्व बहुउपयोगी संरक्षित क्षेत्र होता है जिसमें आनुवंशिक विविधता को उसके प्रतिनिधि पारितंत्र में वन्य-जीवन जनसंख्या, आदिवासियों की पारंपरिक जीवन शैली आदि को सुरक्षा प्रदान कर संरक्षित किया जाता है। भारत ने यथास्थल संरक्षण में उल्लेखनीय कार्य किया है। देश में कुल 89 राष्ट्रीय पार्क हैं जो 41 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फैले हैं। जबकि देश में कुल 500 अभ्यारण्य हैं जो कि लगभग 120 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फैले हैं। देश में कुल 17 जैवमण्डल रिजर्व हैं। नीलगिरि जैवमण्डल रिजर्व भारत का पहला जैवमण्डल रिजर्व था जिसकी स्थापना सन 1986 में की गयी थी। यूनेस्को ने भारत के सुन्दरवन रिजर्व, मन्नार की खाड़ी रिजर्व तथा अगस्थमलय जैवमण्डल रिजर्व को विश्व जैवमण्डल रिजर्व का दर्जा दिया है।

2. बहिःस्थल संरक्षण - यह संरक्षण कि वह विधि है जिसमें प्रजातियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास के बाहर जैसे वानस्पतिक वाटिकाओं जन्तुशालाओं, आनुवंशिक संसाधन केन्द्रों, संवर्धन संग्रह आदि स्थानों पर किया जाता है। इस विधि द्वारा पौधों का संरक्षण सुगमता से किया जा सकता है। इस विधि में बीज बैंक, वानस्पतिक वाटिका, ऊतक संवर्धन तथा आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जहाँ तक फसल आनुवंशिक संसाधन का संबंध है भारत ने बहिःस्थल संरक्षण में भी प्रसंशनीय कार्य किया है। जीन कोष में 34,000 से ज्यादा धान्य फसलों (गेहूँ, धान, मक्का, जौ एवं जई) तथा 22,000 दलहनी फसलों का संग्रह किया गया है जिन्हें भारत में उगाया जाता है।

इसी तरह का कार्य पशुधन कुक्कुट पालन तथा मत्स्य पालन के भी क्षेत्र में किया गया है।

7. निष्कर्ष - मानव सभ्यता के विकास की धुरी जैव-विविधता मुख्यतः आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के वनस्पतियों के आक्रमण, अतिशोषण, वन्य-जीवों का शिकार, वनविनाश, अति-चराई, बीमारी आदि के कारण खतरे में है। अतः पारिस्थितिक संतुलन, मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा, भू-स्खलन आदि) से मुक्ति के लिये जैव-विविधता का संरक्षण आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. विल्सन, ई.ओ. एवं पिटर्स, एफ.एम. (1988) बायोडाइवर्सिटी (संपादित), नेशनल एकेडमी प्रेस, वाशिंगटन डी.सी.।
2. हेवुड, वी.एच. एवं वाटसन, आर.टी. (1995) ग्लोबल बायोडाइवर्सिटी असेस्मेन्ट (संपादित), यूनाइटेड नेशन इन्वायरन्मेण्ट प्रोग्राम, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रीज, यू.के.।
3. भरुचा, ई. (2005) टेक्स्टबुक ऑफ एनवायरनमेन्टल स्टडीज, यूनिवर्सिटी प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इण्डिया।
4. शर्मा, पी.डी. (2004) इकोलॉजी एण्ड एनवायरन्मेन्ट, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, इण्डिया।
5. सिंह, ए. (2007) वोरहेविया डिफ्यूजा: एन ओवर-ऐक्सप्लॉयटेड प्लाण्ट ऑफ मेडिसिनल इमपॉरटेन्स इन रूरल एरियाज ऑफ ईस्टर्न उत्तर प्रदेश, करेण्ट साइन्स, खण्ड-93, अक-4. पृ. 446।
6. मेस, जी.एम. तथा स्टुअर्ट, एस. (1994), ड्राफ्ट आई यू सी एन रेड लिस्ट कटेगरीज, वरजन 2.2 स्पीसीज 21/22: मु.पृ. 13-14।
7. आई यू सी एन (1994 डी) आई यू सी एन रेड लिस्ट कटेगरीज, आई यू सी एन, इंग्लैण्ड।